



*Date: 21-12-24*

## Frosty and bitter

*Parliament needs to be more productive, and not sidetracked by barbs*

### Editorial

The first winter session of 18th Lok Sabha ended on December 20 as one of the least productive and most acrimonious in history. The conflict between the government and the Opposition degenerated into a scuffle on the penultimate day, followed by absurd allegations and police reports. The Opposition sent a notice for a motion of no confidence in Rajya Sabha Chairman and Vice-President of India Jagdeep Dhankhar, which was rejected by the Deputy Chairman. The acrimony peaked with the Opposition turning a reference by Home Minister Amit Shah to Dr. B.R. Ambedkar into a stick to beat the Bharatiya Janata Party (BJP) with. Mr. Shah's misspoken remarks were taken out of context by the Opposition which feels that it is par for the course. After all, the BJP had made ridiculous allegations about the Congress party's supposed link with anti-India forces abroad to stall Parliament proceedings for several days earlier. Productivity in the Rajya Sabha was 40%, as it met for 43 hours and 27 minutes of the schedule. The Lok Sabha functioned for 54.5% of its scheduled time. Both the Houses witnessed protests from the treasury and Opposition sides over issues such as the alleged interference of U.S. billionaire George Soros in Indian politics, and the U.S. government's actions against the Adani Group.

The session was scheduled to take up 16 Bills in the legislative business and the first batch of supplementary grants under the financial business. Of the 16 Bills, only one Bill, the Bharatiya Vayuyan Vidheyak, 2024, significant for the civil aviation sector, was passed in both Houses. The Rajya Sabha passed the Boilers Bill and the Oilfields (Regulation and Development) Amendment Bill, bringing major changes in the industrial laws governing large furnaces and boilers and the petroleum sector. Other than the Appropriation Bills as part of the supplementary demands for grants, the Lok Sabha discussed and passed the Banking Laws (Amendment) Bill, the Railways (Amendment) Bill and the Disaster Management (Amendment) Bill. The debates saw Opposition members asking the government to protect the public sector banking system, ensure the safety of rail passengers and employees and bring in transparency in the allocation of funds to States hit by natural calamities. The Constitution (One Hundred and Twenty-Ninth Amendment) Bill and the Union Territories Laws (Amendment) Bill, that aim to achieve simultaneous elections in the country, were introduced and referred to a Joint Committee of Parliament. External Affairs Minister S. Jaishankar made statements in both Houses on India-China relations. The winter session demonstrated the need for an urgent restoration of parliamentary norms and basic decency in exchanges between political opponents.

---



# दैनिक भास्कर

Date: 21-12-24

## मांग में कमी के वास्तविक कारण तलाशने होंगे

संपादकीय



अर्थशास्त्रियों के लिए भारत की अर्थव्यवस्था एक पहेली बन गई है। जहां एक ओर मांग में भारी गिरावट है, क्योंकि लोगों के पास पैसे नहीं हैं, वहीं महंगाई लगातार मुंह बाए खड़ी है। भारत सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार (सीईए) ने हाल के कई संबोधनों में निजी क्षेत्र, खासकर कॉर्पोरेट दुनिया को कहा है कि वे अपने कर्मचारियों के लिए समुचित वेतन सुनिश्चित करें। दरअसल वे एक ताजा रिपोर्ट का जिक्र कर रहे थे, जिसमें कॉर्पोरेट घरानों का लाभ पिछले चार साल में चार गुना बढ़ा है, लेकिन कर्मचारियों की वेतन वृद्धि औपचारिक रोजगार के सभी छह सेक्टर्स में महज 0.8-5.4% रही। महंगाई दर को इस वृद्धि से घटा लिया जाए तो यह वेतन 2019-23 के चार साल में नकारात्मक होता गया है। सीईए की चिंता सही है। अगर वेतन लगातार नकारात्मक रहा तो वेतनभोगी

अपने खर्च में कटौती ही करेगा। लेकिन सरकार को यह भी देखना होगा कि क्या मांग घटने का सिर्फ यही कारण है? क्या यह सच नहीं है कि कुल रोजगार में आधे से ज्यादा लोग स्व-रोजगार में लगे हैं? क्या यह भी गलत है कि किसान-खेत मजदूर भी बदतर स्थिति में हैं और उनका जीवन भी महंगाई से त्रस्त है, जिससे मांग पर असर पड़ा है? लिहाजा केवल कॉर्पोरेट व निजी क्षेत्र पर अपनी असफलता का ठीकरा फोड़ना सच मुंह मोड़ने जैसा होगा।

Date: 21-12-24

## समय आ गया है कि हम भी अपनी सॉफ्ट पावर को बढ़ाएं

हर्ष गोयनका, ( चेयरमैन, आरपीजी ग्रुप )

कुछ ही हफ्तों में दुनिया के नेता और उद्योगपति स्विट्जरलैंड के शांत, सुरम्य शहर दावोस में एकत्र होंगे, जहां वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम आयोजित किया जाएगा। इस साल इस आयोजन का विषय है- बुद्धिमत्ता के युग के लिए सहभागिता । यह आयोजन स्विट्जरलैंड की सॉफ्ट पावर को दर्शाता है। वह एक छोटा-सा देश है, जिसने विश्वास और तटस्थता के

मूल्यों को कुशलता से गढ़ा और वैश्विक मंच पर अपनी अलग पहचान बनाई। यह बताता है कि सही रणनीति से छोटे देश भी विश्व मंच पर बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

सॉफ्ट पावर का अर्थ है अपनी संस्कृति, मूल्यों और कूटनीति के माध्यम से दुनिया पर प्रभाव डालना। आज केवल आर्थिक और सैन्य शक्ति ही पर्याप्त नहीं है- शिक्षा, तकनीक, कला और सांस्कृतिक धरोहरें कहीं गहरी छाप छोड़ती हैं। यह दिल और दिमाग को जीतने का वह तरीका है, जिसे हार्ड पावर से हासिल नहीं किया जा सकता।

इन मायनों में अमेरिका का कोई सानी नहीं। हॉलीवुड की फिल्मों से लेकर मैकडॉनल्ड्स जैसी फास्ट-फूड चेन तक उसने अपनी संस्कृति और उत्पादों को दुनिया के जीवन का हिस्सा बना दिया है। हार्वर्ड, येल और स्टैनफर्ड वैश्विक शिक्षा के प्रतीक बन गए हैं। संगीत में एल्विस प्रेस्ली से लेकर टेलर स्विफ्ट तक अनेक कलाकार दुनिया में मशहूर हैं। एप्पल और गूगल जैसी कंपनियां ग्लोबल इनोवेशन का नेतृत्व करती हैं और अमेरिका की छवि को आविष्कारों और स्वतंत्रता की भूमि के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

चीन ने अपनी पावर का निर्माण बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव जैसी परियोजनाओं के जरिए किया है, जिससे उसने आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत किया है। ओलिम्पिक जैसे आयोजनों की बेहतरीन मेजबानी करने की उसकी क्षमता उसकी वैश्विक आकांक्षाओं का प्रमाण है। जबकि चीनी व्यंजन, पारंपरिक चिकित्सा और मार्शल आर्ट विश्वभर में लोकप्रिय हैं। आलोचनाओं के बावजूद, चीन की आधुनिकता और सांस्कृतिक परंपराओं का मेल उसे एक शक्तिशाली वैश्विक खिलाड़ी बनाता है।

जापान ने भी परंपरा और आधुनिकता के अद्भुत संतुलन से अपनी सॉफ्ट पावर को मजबूत किया है। एनीमे मंगा और वीडियो गेम्स ने जापान को युवा पीढ़ी के बीच विशेष रूप से लोकप्रिय बनाया है। सुशी और रामेन जैसे व्यंजन अब वैश्विक भोजन का हिस्सा हैं। टोयोटा, सोनी और निनटेंडो जैसी कंपनियों ने जापान को तकनीकी इनोवेशन का पर्याय बना दिया है। कार्यक्षमता को सुंदरता से जोड़ने की जापान की अनूठी कला दुनिया में उसका एक खास मुकाम बनाती है।

दक्षिण कोरिया ने भी सॉफ्ट पावर के क्षेत्र में तेजी से अपनी पहचान बनाई है। कोरियन वेव ने बीटीएस और ब्लैकपिंक जैसे के पॉप बैंड्स को ग्लोबल स्टार बना दिया है। स्क्विड गेम और पैरासाइट जैसी फिल्मों ने मनोरंजन के क्षेत्र में नए मानक स्थापित किए हैं। सैमसंग और हुंडई जैसी कंपनियां कोरिया की तकनीकी शक्ति का प्रतीक हैं। दक्षिण कोरिया ने साबित किया है कि मनोरंजन, तकनीक और संस्कृति के माध्यम से राष्ट्रीय छवि को कैसे वैश्विक ऊंचाइयों तक ले जाया जा सकता है।

माइकेलेंजेलो और दा विंची की कलाकृतियों से लेकर रोम और वेनिस के अभिभूत कर देने वाले वास्तुशिल्प तक- इटली की सांस्कृतिक विरासत आज भी दुनिया को प्रेरित करती है। फैशन जगत में गुच्ची, प्राडा और वर्साचे जैसे ब्रांड दुनिया के ट्रेंड्स तय करते हैं। मिलान फैशन वीक और वेनिस बिएनाले जैसे आयोजन इटली को कला और स्टाइल का केंद्र बनाए रखते हैं। पिज्जा और पास्ता दुनिया भर के लोगों के पसंदीदा व्यंजन बने हुए हैं।

भारत के पास भी अपनी सॉफ्ट पावर को वैश्विक स्तर पर मजबूत करने की संभावना है। योग और आयुर्वेद दुनिया में पहचान बना चुके हैं। भारतीय सिनेमा ने रूस, जापान और मध्य-पूर्व के लोगों को मोहित किया है। भारतीय व्यंजन

सांस्कृतिक विविधता को दर्शाते हैं। यूपीआई और आधार जैसे तकनीकी इनोवेशन भारत की आधुनिक शक्ति का प्रमाण हैं। दुनिया की शीर्ष कंपनियों का नेतृत्व करने वाले भारतवंशी भी भारत की छवि को और मजबूत बनाते हैं।

सॉफ्ट पावर राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और वैश्विक रिश्तों को मजबूत करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। भारत के पास अवसर है। हमें अपनी ताकतों को सामने लाना होगा, कहानियां सुनानी होंगी और आत्मविश्वास विश्व मंच पर अपनी जगह बनानी होगी।

## दैनिक जागरण

Date: 21-12-24

### दूर होता सामान शिक्षा का लक्ष्य

प्रेमपाल शर्मा, ( लेखक भारत सरकार में संयुक्त सचिव रहे शिक्षाविद् हैं )



शिक्षा सुधार की प्रक्रिया में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के 10वीं के छात्रों के लिए विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में भी वैसे ही दो तरह के पाठ्यक्रम बनाने पर विचार हो रहा है, जैसा गणित विषय में पहले से ही है। अभी सीबीएसई 10वीं कक्षा में गणित बेसिक और गणित स्टैंडर्ड दो स्तर पर ऑफर किया जाता है। इसके आधार पर कुछ विद्यार्थी बेसिक गणित पढ़ते हैं और कुछ स्टैंडर्ड गणित। बेसिक गणित की तुलना में स्टैंडर्ड गणित कठिन होता है। स्टैंडर्ड गणित पढ़ने वाले विद्यार्थी ही आगे चलकर इंजीनियरिंग आदि की परीक्षा देने में समर्थ होते हैं। यहां तक कि 11वीं और 12वीं में भी गणित पढ़ने की आजादी इन्हीं छात्रों को दी जाती है। गणित विषय के संबंध में इस बात पर कुछ हद तक सहमत हुआ जा सकता है, क्योंकि इसकी कुछ कठिन परिकल्पनाएं एक स्तर के बाद काम नहीं आतीं। याद करें तो किसी वक्त नौवीं

और दसवीं में लड़कियों के लिए गणित की जगह होम साइंस का विकल्प रहता था। हालांकि अब वक्त बदल गया है। समाज की समझ में भी यह बात आ गई है कि लड़कियां भी गणित और विज्ञान में उतनी ही प्रतिभा रखती हैं, जितना लड़के। यही कारण है कि ताजा आंकड़ों के अनुसार इंजीनियरिंग कालेजों में 30 प्रतिशत लड़कियां इंजीनियरिंग पढ़ रही हैं। मौजूदा सरकार ने तो एक ऐतिहासिक कदम बढ़ाते हुए आइआईटी में 20 प्रतिशत सीट लड़कियों के लिए आरक्षित कर दी है, लेकिन दो अलग तरह के पाठ्यक्रम की यही बात विज्ञान और सामाजिक विषयों के लिए सही नहीं होगी।

विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की शिक्षा ही बच्चों की समझ को मुकम्मल बनाती है। इसलिए इन विषयों को दुनिया भर में दसवीं तक अनिवार्य रूप से सर्वश्रेष्ठ ढंग से पढ़ाया जाता है। शिक्षा की बुनियाद यही विषय बनाते हैं। विज्ञान जहां बच्चों को तर्कशील प्रयोगधर्मी बनाता है, वहीं सामाजिक विज्ञान उनमें समाज, देश-दुनिया की राजनीति, अर्थशास्त्र और

इतिहास की समझ पैदा करता है। लिहाजा इन विषयों की पढ़ाई हर बच्चे के लिए समान रूप से अनिवार्य होनी चाहिए। ऐसी शिक्षा ही उन्हें स्वावलंबी बनाएगी और यही लोकतंत्र के हित में भी है। दो तरह के पाठ्यक्रम बनाने के पीछे बच्चों पर पढ़ाई के बोझ को कम करने का विचार हावी लगता है, लेकिन यह सच्चाई से बहुत दूर है। इसे कोटा या दूसरी जगहों पर छात्रों द्वारा की जा रही आत्महत्याओं से जोड़ना गलत होगा, क्योंकि उन बच्चों में मानसिक तनाव समाज एवं मां-बाप के दबाव और नंबरों की अंधी दौड़ की देन है। उन पर इन विषयों का दबाव नहीं है। देखा जाए तो शिक्षा का अर्थ केवल कक्षाएं पास करना या परीक्षाओं में कुछ नंबर ज्यादा लाना ही नहीं होता, बल्कि बच्चों में एक बेहतर नागरिक बनाना होता है। जैसे कि ब्रिटेन की शिक्षा प्रणाली करती है। वह कहती है कि "15 वर्ष की उम्र तक विद्यार्थी को पूरी दुनिया में घूमने और संवाद करने की क्षमता होनी चाहिए।" यह विज्ञान और दूसरे विषयों को और बेहतर ढंग से पढ़ने से ही संभव हो सकता है, पाठ्यक्रम की काट-छांट से नहीं।

नीति निर्धारकों को गणित के अनुभव से सबक लेना चाहिए। दिल्ली के निजी महंगे स्कूलों में सभी बच्चे जहां स्टैंडर्ड गणित पढ़ते हैं, वहीं सरकारी स्कूलों में ज्यादातर बच्चे बेसिक गणित। जहां स्टैंडर्ड गणित पढ़ने वाले बच्चों से इंजीनियर या डाक्टर बनने की उम्मीद की जाती है, वहीं सरकारी स्कूलों में छात्रों के करियर के प्रति एक उदासीन रवैया देखा जाता है। यदि विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में भी यह वर्गीकरण कर दिया गया तो सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता और गिर जाएगी। हमें सरकारी स्कूलों की शिक्षा को और बेहतर बनाने की जरूरत है, न कि और कमजोर करने की। प्रश्न यह है कि क्या उच्च शिक्षा में आगे बढ़ने के लिए इन बच्चों को मदद मिलेगी? हो सकता है कि ऐसे दोहरे पाठ्यक्रम की वजह से सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र और पीछे रह जाएं। यह कदम नई शिक्षा नीति के उस विचार की भी उपेक्षा करता है, जिसमें समान शिक्षा की बात कही गई है और जिसके तहत मेडिकल और आइआइटी जैसे संस्थाओं या पिछले दिनों केंद्रीय विश्वविद्यालय में नामांकन के लिए समान प्रवेश परीक्षाएं शुरू की गई हैं। हमारे देश के निजी स्कूलों से निकले इंजीनियरों की क्षमता और स्किल पर दुनिया भर में ऐसे प्रश्न उठ रहे हैं कि उनमें से 70 प्रतिशत डिग्री होने के बावजूद सक्षम नहीं हैं। ऐसी चुनौती के बीच तो हमें अपने पाठ्यक्रमों को और बेहतर करने की जरूरत है।

हालांकि नई शिक्षा नीति में पाठ्यक्रमों को मजबूत बनाने, प्राइमरी एवं उच्च स्तर अपनी भाषाओं में पढ़ाई पर जोर दिया गया है, लेकिन इस दिशा में अभी कोई विशेष प्रगति नहीं दिखी है। इसके अलावा 11वीं एवं 12वीं और दूसरे स्तरों पर अपनी मर्जी से विषय लेने की जो बात चार साल पहले हुई थी, उस दिशा में भी ठोस कदम नहीं बढ़ाए सके हैं। शिक्षा की पुरानी शैली यथावत जारी है, बल्कि उसमें और गिरावट आई लगती है, जिसका प्रमाण देश में आत्महत्या करने वाले विद्यार्थियों और बाहर जाकर पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि है। यह न भूलें कि शिक्षा प्रणाली में बदलाव भावी पीढ़ियों को भी प्रभावित करते हैं। पिछली सदी के छठे दशक में अंतरिक्ष विज्ञान में जब रूस आगे बढ़ता नजर आया तो अमेरिका ने अपनी विज्ञान नीति में आमूलचूल बदलाव किया, जिसका प्रभाव आज नजर आ रहा है। विज्ञान में आज अमेरिका दुनिया का अगुआ बना है। वक्त आ गया है कि दुनिया भर की शिक्षण पद्धतियों को सीखते हुए हम भी अपनी विज्ञान और सामाजिक शिक्षा को ऐसा बनाएं कि दुनिया भर के लोग भारत में पढ़ने के लिए लालयित हों।

# बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 21-12-24

## आरबीआई की कामयाबी के लिए सरकार का एजेंडा

### के पी कृष्णन

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के नए गवर्नर को मुझ जैसे तमाम स्तंभकार उन अहम सवालों के बारे में सलाह दे रहे हैं, जो उनके सामने हैं। मगर इस समय की खास बात यह है कि गवर्नर की सफलता की जिम्मेदारी सरकार पर है।

अधिकतर केंद्रीय बैंकों का काम मौद्रिक नीति पर ध्यान देना ही होता है मगर रिजर्व बैंक की भूमिका काफी लंबी-चौड़ी है। दिक्कत यह है कि रिजर्व बैंक की इन भूमिकाओं में बुनियादी तौर पर आपसी टकराव है। उसकी ज्यादातर दिक्कतें भी इन टकरावों के कारण ही उपजी हैं। ये भूमिकाएं क्या हैं?

1. रिजर्व बैंक एक मौद्रिक प्राधिकरण है और इसके इन कामों पर अब मौद्रिक नीति समिति का नियंत्रण है। इस समिति में गवर्नर और रिजर्व बैंक की बात अंतिम चाहे न हो मगर निर्णायक जरूर होती है।
2. यह बैंकों और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का नियामक भी है। यह जमा बीमा संस्था का स्वामी भी है, जिसका काम तब शुरू होता है जब बैंक नाकाम हो जाते हैं (जिसमें बैंकिंग नियमन की नाकामी का भी हाथ होता है)।
3. यह भुगतान निपटान का नियामक भी है। इसके पास भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम का परोक्ष नियंत्रण भी है।
4. यह वित्तीय स्थिरता नियामक भी है जिसका काम सरकार और वित्तीय क्षेत्र की अन्य सांविधिक विनियामक संस्थाओं के साथ मिलकर काम करता है, लेकिन नेतृत्व रिजर्व बैंक के हाथों में रहता है।
5. यह सरकार का खजाना और ऋण संभालता है। साथ ही यह सरकारी डेट बाजार का नियामक भी है। यह सरकारी डेट बाजार का सबसे बड़ा भागीदार है तथा ज्यादातर मार्केट इन्फ्रास्ट्रक्चर इंस्टीट्यूट्स (एमआईआई) का स्वामित्व और परिचालन इसी के पास है।
6. यह विदेशी मुद्रा के प्रवाह को काबू में रखता है और विदेशी मुद्रा बाजार का सबसे बड़ा खिलाड़ी भी है।
7. यह मुद्रा का प्रमुख नियामक है और यही मुद्रा जारी भी करता है। इसके पास मुद्रा छापने वाली प्रेस भी हैं। मगर संसदीय विधानों के तहत मुद्रा से जुड़ी ज्यादातर औपचारिक नियामकीय भूमिका सरकार की ही हैं।
8. यह मुद्रा बाजार का नियमन करता है और उन सभी डेरिवेटिव का भी नियामक है, जिनका विनियमन भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड (सेबी) नहीं करता।

9. यह प्रौद्योगिकी सेवा कंपनी चलाता है जिसमें 800 से अधिक कर्मचारी हैं और वह क्लाउड सेवा कंपनी शुरू करने पर गंभीरता से विचार कर रहा है।

दुनिया में कोई और केंद्रीय बैंक नहीं है जो इतने सारे कामों को एक साथ साध रहा हो। समस्या यह है कि इनमें से कई भूमिकाएं एक दूसरे की विरोधी हैं। सरकार का ऋण संभालने वाले की भूमिका में वह दरें कम रखने की उम्मीद करता है मगर मुद्रास्फीति को काबू में करने की उसकी जिम्मेदारी से इसका सीधा टकराव होता है। इसी प्रकार मजबूत या स्थिर विनिमय दर की उसकी तलाश मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने की उसकी भूमिका से टकराती है। बैंकिंग नियमन अधिनियम और उसके तहत सरकारी बैंकों के बारे में भारत सरकार को दी गई भूमिका बैंकिंग नियमन में रिजर्व बैंक और सरकार का सीधा टकराव कराती है। भुगतान नियमन में मजबूत अर्थशास्त्र एनपीसीआई और यूपीआई में सरकारी एकाधिकार से टकराती है।

जो लोग केंद्रीय बैंकिंग में नए हैं वे मंडेल-फ्लेमिंग की 'इंपॉसिबल ट्रिनिटी', टिंबर्जन के 'असाइनमेंट प्रिंसिपल', विवेक, शक्ति विभाजन और अर्थव्यवस्था से जुड़े दूसरे सिद्धांतों तथा नियामकीय ढांचे के विरुद्ध किडलैंड/प्रेस्कॉट के नियमों जैसे सैद्धांतिक विचारों को खारिज कर देते हैं। मगर व्यावहारिक लोग इन सैद्धांतिक मसलों को समझते हैं। आइए, रिजर्व बैंक के कुछ पिछले गवर्नरों के कार्यकाल में ऐसी उथलपुथल भरी परिस्थितियों का परीक्षण करते हैं:

1. वाई वी रेड्डी बनाम वित्त मंत्री का मसला वास्तव में विशाल और लगातार बढ़ते पूंजी प्रवाह और विनिमय दर की स्थिरता के बीच जबरदस्त संघर्ष को संभालने के बारे में था। इस प्रवाह के कारण देश के भीतर नकदी का इतना भंडार हो गया कि संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के समय कर्ज तेजी से दिया जाने लगा, मुद्रास्फीति का संकट हुआ और उसके बाद बैंकिंग संकट उत्पन्न हुआ।
2. डी. सुब्बाराव बनाम वित्त मंत्री में तो राजकोषीय अनुशासनहीनता के बीच मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने तथा विनिमय दर को कम रखने के आह्वान के बावजूद उसे बाजार के जरिये ही तय होने देने की बात थी।
3. रघुराम राजन बनाम भारत सरकार में मसला नोटबंदी और रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार की परस्पर विरोधी भूमिका के बारे में था। नकदी पर चलने वाली अर्थव्यवस्था में मुद्रा नियामक की भूमिका अहम है। हमारा देश अब भी नकदी पर ही चलता है। इस संदर्भ में याद कीजिए कि रिजर्व बैंक के बोर्ड से जब नोटबंदी पर मशविरा किया गया तो उसने बहुमत के खिलाफ राय नहीं दी। ये तथ्य अब इस विषय में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में हैं।
4. ऊर्जित पटेल का कार्यकाल सरकारी बैंकों के नियमन में टकरावों से भरा था।
5. विगत कुछ महीनों के दौरान सरकारी अधिकारियों द्वारा शक्तिकांत दास के विरुद्ध असंतोष का सार्वजनिक प्रकटीकरण भी मुद्रास्फीति पर नियंत्रण और उचित मुक्त पूंजी प्रवाह के साथ विनिमय दर को स्थिर रखने के बारे में था।

नए गवर्नर को डेरिवेटिव बाजार में भारी भरकम सटोरिया गतिविधियों का सिरदर्द विरासत में मिला है। इस दौरान रुपये में गिरावट से खजाने को नुकसान की आशंका के बारे में सवाल पूछे जा रहे हैं। रिजर्व बैंक के सभी गवर्नरों को इन कठिनाइयों का सामना क्यों करना पड़ा है? इनमें से प्रत्येक एक शानदार व्यक्ति है, जिसमें अद्भुत बौद्धिक क्षमता,

परिपक्वता और व्यक्तिगत निर्णय की क्षमता है। शायद इसे शेक्सपियर ने ज्यादा अच्छी तरह से समझाया था, 'प्यारे ब्रूटस, गलती हमारी नहीं हमारे सितारों की है।'

आरबीआई की जिम्मेदारी, उसकी बुनियाद और व्यापक भूमिका विषय के प्याले की तरह है, जो एक गवर्नर से दूसरे गवर्नर के हाथ में पहुंचता रहता है। समाधान आरबीआई की तय भूमिका के सही क्रियान्वयन में नहीं बल्कि इस बात में है कि भारत सरकार इन टकरावों को दूर करने की दिशा में प्रयास करे। बिल्कुल उसी तरह जैसे उसने मुद्रास्फीति को लक्ष्य करने के लिए कानून बनाया था।

वित्तीय क्षेत्र का नियमन करने वाली तमाम एजेंसियां संसद द्वारा कार्यपालिका की सलाह पर बनाई जाती हैं। वित्त मंत्रालय इन एजेंसियों की भूमिका, शक्ति, शासन, प्रक्रियाओं और जवाबदेही तय करने वाले कानून बनाता है। 2016 में विधायी बदलावों की मदद से मुद्रास्फीति को लक्ष्य करने वाली व्यवस्था तैयार की गई थी। अगले बजट में उसे याद करना चाहिए और अगले कुछ साल में रिजर्व बैंक की जिम्मेदारी को स्पष्ट करने की योजना बनानी चाहिए। ये तमाम विचार और कानूनों के मसौदे विशेषज्ञ समितियों की रिपोर्ट में मौजूद हैं खास तौर पर वित्तीय क्षेत्र विधायी सुधार आयोग की रिपोर्ट में।



*Date: 21-12-24*

## गिरावट की मुद्रा

### संपादकीय

डालर के मुकाबले रुपए की कीमत गिर कर पचासी से अधिक हो गई। यह अब तक की सबसे बड़ी गिरावट है। बताया जा रहा है कि अमेरिकी फेडरल रिजर्व के अपनी नीतियों में बदलाव की वजह से ऐसा हुआ है। कोरोना के बाद दुनिया के तमाम देश मंदी की चपेट में आ गए थे। उससे उबरने के लिए सभी ने अपने-अपने तरीके से उपाय किए। अमेरिकी फेडरल ने अपनी ब्याज दरों में कटौती कर उसे साढ़े चार फीसद पर ला दिया है। इस तरह डालर की स्थिति मजबूत हुई है। फिर, जब से राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रंप की विजय हुई है, निवेशकों को लगने लगा है कि वहां निवेश करना सबसे फायदेमंद है। इसलिए बहुत सारे निवेशकों ने भारत से पैसे निकाल कर अमेरिका का रुख कर लिया। इससे विदेशी मुद्रा भंडार में भी छीजन दर्ज शुरू हो गई। पिछले कुछ समय तक डालर के मुकाबले रुपए की कीमत में गिरावट लगभग रुकी हुई थी, तब विशेषज्ञों ने कहना शुरू कर दिया कि सरकार विदेशी मुद्रा भंडार से डालर की निकासी करके रुपए की कीमत को रोक रखा है। मगर अब वह तरीका भी शायद काम नहीं आ रहा।

डालर के मुकाबले रुपए की कीमत में गिरावट का असर व्यापार, पर्यटन, शिक्षा आदि पर पड़ता है। भारत अपनी जरूरत का अधिकतर ईंधन तेल दूसरे देशों से खरीदता है। ऐसे में जब भी कच्चे तेल की कीमत बढ़ती है, तो सरकार का खर्च बढ़ जाता है। इसके अलावा, दवाइयों के लिए कच्चा माल, खाद्य तेल, इलेक्ट्रॉनिक साजो-सामान आदि के लिए भी हम

दूसरे देशों पर निर्भर हैं। विदेश पढ़ने गए विद्यार्थियों और पर्यटकों की जेब पर बोझ बढ़ जाता है। इसलिए रुपए की कीमत का गिरना चिंताजनक होता है। रुपए की कीमत गिरने की कुछ वजहें साफ हैं। व्यापार घाटा बढ़ता है, तो डालर के मुकाबले रुपए की कीमत घट जाती है। हालांकि वर्षों से निर्यात बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है, घरेलू बाजार और स्वदेशी को बढ़ावा देने की कोशिश की जा रही है, मगर हकीकत यह है कि निर्यात में लगातार कमी देखी जा रही है। व्यापार घाटा पाटने के लिए कई विदेशी वस्तुओं के आयात पर रोक लगाने और देसी वस्तुओं को प्रश्रय देने की कोशिश की गई, इसका कुछ असर भी हुआ। मगर फिर भी व्यापार घाटा कम नहीं हो पा रहा। खासकर चीन के साथ हमारा व्यापार घाटा लगातार बढ़ रहा है।

महंगाई पर काबू पाने के मकसद से रिजर्व बैंक ने लगातार रेपो दर को ऊंचा बनाए रखा है, मगर स्थिति यह है कि बाजार में पूंजी का अपेक्षित प्रवाह नहीं बन पा रहा। इसकी बड़ी वजह लोगों की आय में बढ़ोतरी न हो पाना है। इन स्थितियों का असर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर पड़ता है। जैसे ही बाहरी निवेशकों को लगने लगता है कि किसी देश में उपभोक्ता व्यय घट रहा है, तो वे वहां निवेश करने से बचते हैं। पिछले कुछ समय से हमारी विकास दर और उसमें विनिर्माण क्षेत्र की स्थिति संतोषजनक नहीं है। ऐसे में डालर की आवक कम हुई है। इस स्थिति में रुपए की कीमत घटनी शुरू हो जाती है। भारत में यह सिलसिला लगातार बना हुआ है। इससे अर्थव्यवस्था को लेकर चिंता बढ़नी स्वाभाविक है। सरकार अर्थव्यवस्था को पांच लाख करोड़ डालर तक ले जाने को संकल्पित है, मगर रुपए की गिरावट का रुख देखते हुए इसका भरोसा नहीं बन पाता ।

---